ज्ञान तत्व अंक 145
(क) लेख सम्पन्नों का अर्थशास्त्र।
(ख) लेख, मैनें ही मोहन दास कर्मचंद गांधी को मारा, नाथूराम विनायक गोडसे।
(ग) कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर ।

(क) सम्पन्नों का अर्थशास्त्र

आदर्श समाज व्यवस्था में समाजशात्र, राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र का समन्वय होता है। यदि किसी एक की अनदेखी कर दी जावे तो अव्यवस्था होनी निश्चित है। अर्थशास्त्र में भी यदि श्रमशास्त्र की अनदेखी कर दी जावे तो परिणाम भयंकर हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में धन बुद्धि और श्रम का संतुलन नहीं रह पाता जैसा कि अभी भारत में हो रहा है।

अर्थशास्त्र में तीन महत्वपूर्ण कारक माने जाते हैं (1) श्रम (2) बुद्धि (3) धन। तीनों ही आय के श्रोत माने जाते है किन्तु तीनों में महत्वपूर्ण अन्तर होता है कि श्रम प्रधान व्यक्ति की आय का एकमात्र माध्यम श्रम ही होने से उसकी आय सीमित होती है। बुद्धि प्रधान व्यक्ति की आय में श्रम के साथ–साथ बौद्धिक माध्यम भी जुड़ जाने से उनकी आय बहुत बढ़ जाया करती है और धन प्रधान व्यक्ति की आय के साधनों में श्रम और बुद्धि के साथ–साथ धन के भी जुड़ जाने से उनकी आय के तीन माध्यम हो जाते हैं और इस तरह उनकी आय के तीन माध्यम हो जाते है और इस तरह उनकी आय में अन्य दो की अपेक्षा बहुत भारी वृद्धि हो जाया करती है। यदि व्यवस्था से अर्थ –व्यवस्था को निकाल दिया जावे या कुप्रबन्ध में चली जावे तो आर्थिक असमानता और श्रम शोषण में लगातार वृद्धि स्वाभाविक हो जाया करती है, क्योंकि श्रम की आय का एक ही आधार है जबकि बुद्धि के दो और धन के तीन।

गुलामी की स्थिति में श्रम संतुष्ट रहता है क्योंकि वह उस स्थिति को अपने भाग्य के साथ जोड़ लेता है किन्तु लोकतंत्र में भी यदि वही स्थिति बनी रहे तो श्रम उसे अपने साथ अन्याय मानने लगता है। ऐसे समय में श्रम जीवियों में असंतोष बढ़ने लगता है जो धीरे–धीरे विद्रोह में बदलने लगता है। श्रम जीवी बुद्धि और धन की अपेक्षा अपनी कमजोरी को समझता तो है किन्तु यदि बुद्धि या धन उसकी कमजोरी में दया या सहायता के सिने पर उसका शोषण शुरू कर दे तब उसके धैर्य का बांध टूटने लगता हैं तब वह समझने लगता है कि धन श्रम के शोषण से ही इकट्ठा हुआ करता है और यह सोच उसे वर्ग संघर्ष की दिशा में ले जाया करती है।

अर्थ नीति श्रम अभाव देशों की भिन्न हुआ करती है और श्रम बहुत देशों की भिन्न। श्रम अभाव देशों में श्रम के लिए पृथक से नीति नहीं बनानी पड़ती क्योंकि वहाँ तो बाहर से श्रम का आयात होता है। ऐसे देश मजबूरी में श्रम के अभाव की पूर्ति के लिए कृत्रिम ऊर्जा का सहारा लिया करते हैं, किन्तु श्रम बहुल देशों की स्थितियाँ इसके ठीक विपरीत होती है। ऐसे देशों को अपनी अर्थनीति में श्रम को बहुत महत्व देना आवश्यक हो जाता है। यदि ये देश श्रमनीति की पृथक से सोच नही बनाएंगे तो श्रम बुद्धि और धन के बीच असमानता बढ़ेगी, श्रम बेरोजगार होगा, श्रम का पलायन होगा, अन्याय होगा, अव्यवस्था होगी और अन्त में श्रमिक अशांति तक हो सकती है।

आज भारत की ऐसी ही स्थिति है। भारत श्रम बहुल देश है और अमेरिका श्रम अभाव देश। अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि समृद्ध देशों को पृथक श्रम नीति बनाने की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि वहाँ श्रम कोई समस्या नहीं है। वहाँ बुद्धि और धन ही मुख्य होते हैं। वे बौद्धिक श्रम को श्रम मानते हैं, शिक्षा को प्रगति का आधार मानते हैं और कृत्रिम ऊर्जा को श्रम सहायक भारत एक श्रम बहुल देश है। यहाँ श्रम की मुख्य पहचान शारीरिक श्रम से होती है, शिक्षा श्रम सहायक है और कृत्रिम ऊर्जा श्रम की प्रति स्पर्धी। इसीलिए भारत को पृथक श्रम नीति अवश्य बनानी पड़ती है। जिसका मुख्य आधार होता है श्रम और कृत्रिम ऊर्जा का उचित अनुपात। यह अनुपात ही अर्थशास्त्र की कुशलता मानी जाती है।

भारत ने पश्चिमी देशों का अन्धानुकरण किया। भारत ने आज तक कभी श्रम नीति पृथक से बनाई ही नहीं। श्रम मंत्रालय बना उसने भी पश्चिमी देशों की नकल की। उसने बौधिक श्रम को शारीरिक श्रम के साथ जोड़ दियां परिणाम स्वरूप शिक्षा श्रम सहायक न होकर श्रम के विकल्प के रूप में बढ़ने लगी। कृत्रिम ऊर्जा भी श्रम सहायक न होकर श्रम शोषक बन गई। श्रम उपेक्षित और शोषित होता चला गया।

भारतीय शाषन व्यवस्था में तीन विचारधाराओं का अस्तित्व है। (1) भाजपा या दक्षिणपंथी (2) कांग्रेस या मध्यमार्गी (3) कम्युनिस्ट या वामपंथी। भारतीय जनता पार्टी की अपनी कोई आर्थिक समझ या पहल नहीं है। इनके पास न कोई पृथक अर्थनीति है न ऐसी नीति बनाने लायक लोग। आर्थिक मामलों में भाजपा एक शुद्ध प्रतिक्रियावादी राजनैतिक दल है जो सत्ता में होता है तो डीजल, पेट्रोल का दाम बढ़ाता है और विरोधी दल में होता है तो विरोध करता है। सेज या अमेरिकी परमाणु डील के सम्बन्ध में भी भाजपा की ऐसी ही विरोधाभासी प्रतिक्रिया हुआ करती है। अन्य सभी आर्थिक मुद्दों पर भाजपा कांग्रेस और साम्यवादियों के विचारों को देख सुनकर ही जबान खोला करती है।

कांग्रेस पार्टी की अपनी अर्थनीति रही। सन् नब्बे के पूर्व तक कांग्रेस पार्टी समाजवादी अर्थनीति का अनुसरण करती रही किन्तु उसे महसूस हुआ कि समाजवादी अर्थ व्यवस्था राष्ट्रीय विकास के भी विपरीत है और आर्थिक न्याय के भी। इसलिए उसने राष्ट्रीय आर्थिक विकास की एक राह पकड़ ली। जिस पर वह अब तक चल रही है। साम्यवादी एकमात्र ऐंसे राजनीतिज्ञ है जिनकी अर्थनीति पर गहरी पकड़ है। ये अच्छी तरह समझते हैं कि कौन सी नीति श्रम असंतोष को कम करेगी और कौन सी श्रम असंतोष का विस्तार करेगीं ये सोची समझी रणनीति के अन्तर्गत ही मनमोहन सिंह जी की आर्थिक विकास की दर में बाधा उत्पन्न करते है और उसी के अन्तर्गत कृत्रिम ऊर्जा की मूल्य वृद्धि को भी रोक कर रखे हैं। वामपंथियों के सम्पर्क में कुल दलों को मिलाकर भी नहीं। यह बात अलग है कि वे राष्ट्रहित की अपेक्षा दलहित तक ही अपनी सोच सीमित रखते हैं।

मनमोहन सिंह जी एक अच्छे अर्थशास्त्री माने जाते हैं। उनकी नीयत बिल्कुल साफ है। राजनैतिक दांवपेंच से भी दूर रहकर साफ–सुथरी स्पष्ट सोच वाले व्यक्ति हैं, किन्तु उन्होंने पश्चिम के देशों में रहकर सिर्फ सम्पन्नों का ही अर्थशास्त्र पढ़ा, श्रमशास्त्र तो उन्होंने कभी न पढ़ा न समझा। श्रम अभाव देश की आर्थिक नीति और आर्थिक अनुभवों से आगे बढ़कर वे भारतीय श्रम बहुल देश के श्रमशास्त्र के विषय में सोच ही नहीं पाते क्योंकि पश्चिम की श्रम नीति में शारीरिक श्रम है ही नहीं जो भारत में बहुलता से एक समस्या बना हुआ है। पश्चिम की किताबें पढ़कर बने अन्य अर्थशास्त्री भी उन्हें वैसी ही सलाह दिया करते हैं। यदा–कदा भरत झुनझुनवाला कुछ–कुछ भारतीय संदर्भ को भी ध्यान में रखते हैं, अन्यथा और तो सबका एक ही आधार होता है **"पश्चिम विद्वानों के सन्दर्भ ग्रन्थ"।** आखिर मनमोहन सिंह जी कैसे अर्थशास्त्री है जिनके भारत में आज तक गरीबी रेखा नहीं मिट सकी। नौ प्रतिशत वार्षिक विकास दर वाला भारत इक्कीस करोड़ लोगों को तेरह रूपया प्रतिदिन देने की घोषणा नहीं कर सका। दो हजार पन्द्रह तक शिक्षा का टार्गेट घोषित करने वाले मनमोहन जी को यह क्यों पता नहीं कि अशिक्षा की तुलना में गरीबी रेखा भारत के लिए एक बड़ा कलंक है। मनमोहन सिंह जी बालश्रम और बाल–विवाह के लिए जितनी शर्म महसूस करते है उतनी यदि गरीबी रेखा के लिए करते तो एक दिन में ही यह कलंक दूर हो सकता था। मनमोहन सिंह सरीखा अर्थशास्त्री यह बात क्यों नहीं समझता कि आवागमन के सस्ता होने से ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का शहरों की ओर पलायन का खतरा बढ़ता है। मनमोहन सिंह जी को यह बात क्यों नहीं समझ में आती कि भारत में कृत्रिम ऊर्जा की मूल्य वृद्धि ही सभी आर्थिक समस्याओं का एकमात्र समाधान है। हम पश्चिम के पूँजीवाद की नकल भी पता नहीं किस तरह कर रहे है कि आज दुनिया का सबसे बड़ा पूँजीपति भी भारत में ही है और सबसे बड़ा गरीब भी दुर्भाग्य से भारत में ही होगा। भारत में इतनी तेजी से पूंजी का असंतुलित विकास हमारे लिए प्रसन्नता का विषय न होकर कलंक का आधार होना चाहिएं किन्तु हम इसके विपरीत अपनी पीठ थपथपाने में लगे हैं। यदि मनमोहन सिंह जी वास्तव में अर्थशास्त्री है तो वे उन कारणों को क्यों नहीं खोज पा रहे जिनके कारण पूंजीवादी विश्व की अपेक्षा भी हमारा विकास अधिक असंतुलित हो रहा हैं।

आजकल किसानों की समस्याओं का बहुत हल्ला है। किसानों की समस्याओं का समाधान भी आवश्यक है किन्तु वह समस्या श्रम समस्या से बिल्कुल अलग है। किसान समस्या के समाधान में ही श्रम समाधान देखना एक बड़ी भूल होगीं श्रम समस्या का समाधान बिल्कुल अलग तरीके से करने की जरूरत है। भारत के आर्थिक विकास में भी श्रम समस्या के समाधान की कल्पना व्यर्थ है। भारत का आर्थिक विकास एक भिन्न विषय है और आर्थिक न्याय भिन्न। भारत का नौ प्रतिशत आर्थिक विकास होने से भी आर्थिक असमानता और श्रम मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि जब तक आर्थिक विकास मे संतुलन नही होगा तब तक विकास चाहे नौ प्रतिशत हो या पन्द्रह प्रतिशत, आर्थिक न्याय नहीं हो सकता। आर्थिक न्याय के लिए आवश्यक है विकास दर को कम से कम चार और चौदह के बीच नौ प्रतिशत की औसत दर प्राप्त करना जबकि वह

अभी है एक और सत्रह के बीच का औसत। मनमोहन सिंह सरीखा अर्थशास्त्री प्रधान मंत्री बने और श्रम की दुर्दशा न रूके यह हमारे लिए दुख की बात है। आशा है कि हमारे अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री बात–बात में पश्चिमी देशों के सम्पन्नों के अर्थशास्त्र की नकल करने की अपेक्षा भारत के श्रम शास्त्र को भी समझने का प्रयास करेंगे।

(ख) मैंने ही मोहनदास कर्मचन्द गांधी को मारा, नाथूराम विनायक गोडसे

नाथुराम विनायक गोडसे ने 8 नवंबर, 1948 से अदालत के सामने जो बयान दिये उनके कुछ अंश इस प्रकार है। (1) गांधी ने महाराजा हिरसिंह को सन्यास लेकर काशी जाने सुझाव तो दिया परन्तु कभी हैदराबाद के निजाम को फकीरी लेकर मक्का जाने का सुझाव नहीं दिया। मै गांधी जी के सिद्धांतों के विषय प्रचार कर रहा हूँ। मेरा ये पूर्ण विश्वास है कि अहिंसा का अति प्रचार हिन्दू को इस योग्य भी नहीं रखेगा कि वे दूसरी जातियों को विशेष रूप से मुसलमानों के अत्याचारों का प्रतिरोध कर सके।

(2) 1946 में सुहराबर्दी की संस्कार के समय नोआखाली (बंगाल) में मुसलमानों के हाथों हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुए उससे हमारा खून खौल गया हमारा क्षोभ उस समय और भी उग्र हो गया जब गांधी जी ने सुहरावर्दी को शरण दी और उसे 'शहीद साहब' के नाम से संबोधित करना प्रारम्भ किया गांधी जी जब दिल्ली आये तो भंगी कालोनी के मंदिर में अपनी प्रार्थना सभा में जनता और पुजारियों के विरोध करने पर भी उन्होंने कुरान की आयतें पढीं, लेकिन कभी भी वह किसी मस्जिद में (मुसलमानों के भय से) गीता न पढ़ सके। वह जानते थे कि मस्जिद में गीता पढ़ने से मुसलमानों द्वारा उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार होगा ?

(3) कितनी लज्जा की बात थी कि कांग्रेस शासन 15 अगस्त सन् 1947 को रंगरेलियां मनाएं, रोशनी करे और आनन्दोत्सव रचाएं है जबकि उसी दिन 15000 सिखों को मुसलमान गोलियों से भूनते हैं और हिन्दू स्त्रियों को नग्न करके जलूस निकालें, 140 मील लम्बा हिन्दू निराश्रितों का जत्था हिन्दुस्तान की ओर आ रहा था। शासन ने इस भयानक कृत्य का कैसे निवारण किया ? वायुयान से रोटियां फेंकी गयी। कहते हैं, 'हमनें स्वराज्य जीता है।'

(4) 1920 में मुहम्मद अली जिन्ना ने कांग्रेस को छोड़कर मुस्लिम लीग बनाई और मुसलमानों के लिए अलग देश की मांग प्रारम्भ कर दीं मुस्लिम लीग को एक ओर तो अंग्रेजों की सहायता मिलती रही और दूसरी ओर गांधी जी की कांग्रेस का सहयोग मिलता रहा।

(5) गांधी जी शिवाजी, राणा प्रताप और गुरू गोविन्द सिंह की निन्दा करते थे और उनको गलत पथ पर चलने वाला कहते थे। मेरा मानना है कि शिवाजी ने जिस प्रकार अफजल खां शिवाजी को मार डाला। प्रत्येक देश भक्त वीर ने अपने समय में देश को अत्याचारों से बचाया परन्तु इस महात्मा के 30 साल के नेतृत्व में एक तिहाई देश हाथ से जाता रहा।

(6) गांधी जी के मन में हिन्दू व मुसलमान दोनों जातियों का नेतृत्व करने की महत्वाकांक्षा प्रबल रूप में थी। हिन्दू मुसलमानों की एकता बढ़ाने का कार्य तब तक तो ठीक था जब तक भारत की स्वतंत्रता को उद्देश्य समझकर अंग्रेजों को भगाने के लिए यह किया गया परन्तु कुछ समय पश्चात् गांधी जी ने अपना उद्देश्य ही मुसलमानों को संतुष्ट करना बना लिया जिसका परिणाम आज हम देख रहे हैं।

(7) टर्की के राज्य का बहुत सा भाग उसके हाथ से निकल गया था। तुर्क नवयुवकों ने टर्की के सुल्तान को राज्य छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया और इसके साथ ही 'खिलाफत आंदोलन' पुनः प्रारम्भ कर दिया। गांधी ने खिलाफत आन्दोलन में कांग्रेस को लगा दिया और इस प्रकार राजनैतिक आंदोलन में साम्प्रदायिकता को ले आए। मोनटेग्यू–चैम्सफोर्ड की सहायता से खिलाफत आंदोलन के प्रभाव को सर्वथा नष्ट कर दिया गया। जब आंदोलन असफल रहा तो मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अपना क्रोध उतारा। गांधी की हिन्दू–मुस्लिम एकता धरी की धरी रह गयी।

(8) मालाबार, पंजाब, बंगाल और सीमा प्रान्त में हिन्दुओं पर अत्यधिक अत्याचार हुए। जिसे मोपला विद्रोह के नाम से जाना जाता है। हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया गया और स्त्रियों को भेड़–बकरियों सी खरीद–फरोख्त हुई। गांधी ने मोपला मुसलमानों की सहायता के लिए

निधि–संग्रह (फंड) कर दिया और हिन्दुओं के लिए कुछ नहीं किया। ये था गांधी की हिन्दू–मुस्लिम का आधार।

(9) अली भाइयों ने खिलाफत आंदोलन असफल हो जाने का बदला लेने के लिए अफगानिस्तान के अमीर को भारत पर आक्रमण के लिए आमंत्रित किया। श्री निवास शास्त्री, लीडर के सम्पादक श्री सी. एफ. एन्ड्रूज ने स्पष्ट रूप से स्वीकारा की गांधी जी इस प्रस्ताव के पक्ष में थे। ब्रिटिश गुप्तचरों ने इस षडयन्त्र को तोड़ा और धरी की धरी रह गयी हिन्दू–मुस्लिम एकता।

(10) गांधी ने 1924 में, मुसलमानों के प्रति अपना अगाध प्रेम प्रदर्शित करने के लिए आर्य समाज पर आक्रमण का घृणित कार्य किया। यही कारण था कि स्वामी दयानन्द का कोई भी अनुयायी गांधी जी का शिष्य नहीं बन सका, अलावा लाजपत राय और श्रद्धानन्द के सिंध में स्वामी दयानन्द के द्वारा लिखित ''सत्यार्थ प्रकाश'' पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया क्योंकि उनके अनुसार आवश्यकता पड़ने पर शक्ति को प्रयोग करना चाहिए लेकिन गांधी की अहिंसा इसके खिलाफ थी।

(11) 1928 तक, जिन्ना का प्रभाव बहुत बढ़ चुका था।और उसे खुश करने के लिए गांधी ने सिन्ध को बम्बई से अलग करने की मांग मान ली। सिन्ध में हिन्दुओं को साम्प्रदायिक दानवों के हाथों सौंप दिया गया। गांधी की हिन्दू मुस्लिम एकता स्पप्न बनकर रह गयी। हारे जुआरी की तरह गांधी अपने दाँव बढ़ाते गए। लेकिन जिन्ना प्रसन्न होने के बजाए अलग हटता गया। 1928 के बाद मुस्लिम लीग ने कांग्रेस से सम्बन्ध रखने से ही इंकार कर दियां 1921 में लाहोर के स्वतंत्रता प्रस्ताव में मुसलमान शामिल नही हुए। इसके बाद हिन्दू–मुस्लिम एकता की बाधा किसी को नही रही, परन्तु गांधी अपनी जिद् के कारण मुसलमानों को हिन्दू हितों की बलि देते चले गये।

(12) 1931 में राउंड टेबल कांफ्रेंस में गांधी जी ने मैक्डोनाल्ड को हिन्दू व मूसलमानों को अलग–अलग चुनाव अधिकार देने की स्वीकृति कर दी और इसके बाद भी हिन्दू–मुस्लिम सद्भाव की कल्पना में लगे रहे व देश को भ्रमित करते रहे।

(13) 1935 के Government of India Act की धारा 93 के अनुसार प्रांतो में सत्ता, कांग्रेस के मंत्रिमण्डल के त्यागपत्र के बाद, गवर्नरों के हाथों मे आ गई। गवर्नरों ने मुस्लिम लीग का पक्ष लिया क्योंकि अंग्रेज उनके साथ थे।

(14) पांच प्रान्तों में मुस्लिम मंत्रिमण्डल, छः प्रान्तों के मुसलमानों के पक्ष के गवर्नर थे ऐसी दशा में जिन्ना हावी हो गये। जिन्ना ने 1931 के द्वितीय महायुद्ध में अंग्रेजों को सहायता देने का वायदा कर दिया जबकि कांग्रेस किसी न किसी रूप से युद्ध का विरोध करती रही। जिन्ना ने शर्त भी रख दी कि अंग्रेजों को सहयोग के लिए पाकिस्तान बनाना जरूरी है।

(15) 1942 में **विपक्ष** भारत विभाजन का प्रस्ताव लेकर आया। कांग्रेस कार्य समिति ने विभाजन के सिद्धान्त को कुछ समय पश्चात स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में विभाजन के प्रस्ताव को बहुमत से ठुकरा दिया गया। फिर भी विभाजन हुआ क्यों?

(16) गांधी ने ''भारत छोड़ो आंदोलन'' प्रारंभ किया। ''करो या मरो'' की आज्ञा दी, प्रथम पंक्ति के नेताओं को जेल में डाल दिया गया। तीन हफ्तों में आंदोलन को कुचल दिया गया। जिन्ना ने इस आंदोलन का विरोध किया और उसने कहा–''भारत का विभाजन करो और जाओ। ये हुआ गांधी की हिन्दू–मुस्लिम एकता का अन्त।

(17) गांधी ने मुसलमानों को खुश करने के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के बजाए हिन्दुस्तानी की वकालत की जो लिपि नहीं है। बल्कि मूलरूप से सरल उर्दू है। बादशाह राम व बेगम सीता जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ परन्तु गांधी मे ये साहस ही नही था कि वे पंडित, जिन्ना और महाशय आजाद जैसे शब्दों को प्रयोग करते।

(18) गांधी जी के अनुयायियों ने ही काश्मीर में मुसलमानों को प्रोत्साहित किया कि वे हिन्दू राजा के विरूद्ध विद्रोह करें, परन्तु हैदराबाद की मुस्लिम रियासत में जहां हिन्दू अधिक थे ऐसा नही किया गया।

(19) ग्वालियर में मुस्लिम लीग की अप्रत्यक्ष मांग पर महाराजा सिंधिया को विवश किया कि वे विक्रम संवत की 200 वीं वर्षगांठ मनाएं। किन्तु कुछ समय पूर्व जब ग्वालियर में उपद्रव हुआ और मुसलमानों को थोड़ी सी हानि पहुंची तब गांधी जी ने अनुचित रूप से महाराजा की निन्दा कीं यह कहां की समानता है?

(20) 1945 में केन्द्रीय, लैजिस्लेटीव एसेम्बली के कांग्रेस दल के नेता भुलाभाई देसाई और मुस्लिम लीग दल के नेता मियां लियाकत अली ने गांधी जी के इशारे पर 25 प्रतिशत मुसलमानों के लिए 50 प्रतिशत अधिकार देना स्वीकार कर लिया।
(21) 1946 में 'आजाद हिन्द फौज'' के सिपाहियों पर लालकिले में जो मुकदमा चला उसने पूरे हिन्दूस्तान को इकट्ठा कर दिया। जो लड़ाई इम्फाल में हारी गयी थीं वह लालकिले में जीत ली गयीं ब्रिटिश इंडियन नेवी में विद्रोह हो गया और तदुपरान्त प्रधानमंत्री एटली ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में Transfer of Power Act पास किया। कांग्रेस अखण्ड भारत चाहती थी पर अपनी मांग में विश्वास न था। जिन्ना विभाजित भारत चाहता था व श्री लारेंस, श्री एलेक्जेंडर और श्री क्रिप्स की कैबिनेट मिशन प्लान मान ली गयी। कांग्रेस ने सरकार बनाई पर जिन्ना ने बंगाल, पंजाब, बम्बई व अन्य स्थानों में Direct Action का आह्वान किया। लाखों हिन्दू मारे गये, हजारों हिन्दू, स्त्रियों को जबरन उठा लिया गया, किन्तु इसके बाद भी गांधी हिन्दू मुस्लिम एकता का राग अलापते रहे।
(22) अपने एक लेख में गांधी जी ने पाकिस्तान की कल्पना का कड़ा विरोध प्रकट किया, किन्तु वह दिखावा मात्र था। देश का विभाजन स्वीकार करने से बेहतर था आमरण अनशन। क्यों नहीं किया।

उत्तर –

भाई मोहम्मद शफी आजाद ने ज्ञानतत्व अंक एक सौ उन्चालीस में आचार्य जी के लेख ''धार्मिक मान्यताओं से प्रेरित आतंकवाद'' को पढ़कर अपने कुछ विचार भेजे उसका विस्तृत उत्तर तो आचार्य पंकज जी ही देंगे, किन्तु मेरे विचार में शफी भाई ने उत्तर देने की एक ईमानदार कोशिश की है। दुनिया में धर्म के नाम पर तलवार के उपयोग ने मुसलमानों को पहले जो भी लाभ पहुंचाया हो किन्तु अब तो उस तलवार ने मुसलमानों का अहित शुरू कर दिया है। उन्हें अब अपनी तलवार को ठंडा कर देना चाहिए अन्यथा समाज उनकी तलवार को ठंडा करने के किसी न किसी प्रयत्न पर गंभीरता से सोचने लगा है।
आपने म्लेच्छ और यवन शब्द लिखे। मेरे विचार में यवन शब्द तो मुसलमानों के लिए उपयोग में आता है किन्तु म्लेच्छ शब्द का वैसा उपयोग नहीं जैसा शफी भाई ने समझां फिर भी उनकी सलाह विचार योग्य है। उनकी भारत पाकिस्तान विभाजन के लिए गांधी को घसीटना बिल्कुल ही गलत सोच है। मैं पूरी तरह सहमत हूं कि गांधी जी की जीवनशैली में हिन्दुत्व कूट–कूटकर भरा था। यदि उनमें हिन्दुत्व नहीं होता तो वे अन्य धर्म वालों के प्रति आदर सम्मान का भाव नहीं रखते। गांधी जी ने कभी भी इस्लामिक सोच को हिन्दू विचारधारा से अच्छा नहीं माना। उस समय के कुछ मुसलमान गांधी जी की मुसलमानों के प्रति नरम भावना को अपने लिए उपयोग करना चाहते थे और गांधी जी ऐसे उपयोग के प्रति सतर्क थे तो वे मुसलमान अपने साम्प्रदायिक स्वार्थ में बाधक मानकर गांधी जी पर आरोप लगते थे। मैं अब भी नहीं समझ सका कि ईश्वर अल्ला तेरें नाम के गांधी जी के वाक्य से हिन्दू मुसलमान में दूरी बढ़ने का अर्थ कैसे निकल आया? मैं मानता हूं कि ईश्वर अल्ला और भाई–भाई का नारा भी विभाजन को रोक नहीं सका क्योंकि साम्प्रदायिक स्वार्थ इन नारों पर भारी पड़ा किन्तु ये प्रयत्न किसी भी तरह दोष पूर्ण नहीं कहे जा सकते हैं। साम्प्रदायिक मुसलमानों ने जब अन्तिम रूप से समझ लिया कि गांधी उनकी साम्प्रदायिक सोच को अच्छी तरह समझते हैं तब उन्होंने विभाजन के पक्ष में निर्णय लिया। शफी भाई के अनुसार मुस्लिम वर्ग सशंकित हुआ। मेरे विचार से यह उनकी कुटिल सोच ही मानी जानी चाहिए क्योंकि यह एक खुला तथ्य है कि गाांधी जी हिन्दू मुस्लिम एकता या भाईचारा के तो पक्षधर थे किन्तु मुस्लिम साम्प्रदायिकता को लाभ पहुंचाने तक की मूर्खता के बिल्कुल विपरीत थे। और भी स्पष्ट शब्दों मे कहे तो गांधी जी एक सच्चे हिन्दू थे क्योंकि वे धर्म निरपेक्ष थे, धार्मिक सद्भाव चाहते थे, साम्प्रदायिक तत्वों को दबाना चाहते थे जबकि साम्प्रदायिक मुसलमानों ने देश विभाजन करा दिया और साम्प्रदायिक हिन्दुओं ने गांधी की हत्या कर दी। शफी भाई ने गांधी हत्या, ग्राहम स्अेंस हत्या आदि के प्रेरणा श्रोत के विषय में पूछा है। इस प्रश्न से मुस्लिम तलवार का उत्तर नहीं दिया जा सकता। आज भी गांधी हत्या या स्अेंस हत्या जैसे साम्प्रदायिक उन्मादियों को हिन्दू मान्यता में प्रेरणा श्रोत मानने वालों की संख्या नगण्य हैं आज भी अफजल के प्रति प्रत्यक्ष या परोक्ष सहानुभूति रखने वाले मुसलमानों की तुलना में स्अेंस गोडसे के प्रति हिन्दुओं में सहानुभूति न के बराबर ही है। प्रारम्भ में शफी भाई की स्पष्ट धारणाएं बाद में गांधी तक आते–आते कुतर्क तक चली गई ऐसा मुझे महसूस हुआ।

गोडसे का जो बयान छपा है उसमें एक भी ऐसा तर्क नहीं है जिसमें कहीं भी गांधी हत्या का औचित्य सिद्ध होता हैं गांधी जी हिन्दू मुस्लिम कटुता को आजादी की लड़ाई में बाधक समझते थे। इसलिए वे मुसलमानों को कुछ अतिरिक्त रियायतें देकर भी संतुष्ट रखना आवश्यक मानते थे। उस रियायत की सीमा क्या हो इस पर भिन्न मत हो सकता है किन्तु टकराव टालने के लिए कुछ रियायते देना बिल्कुल उचित कदम था। जो लोग आज भी ऐसी रियायतों के परिणाम निष्फल होने को अपनी सूझ–बूझ की सफलता मानते है उन्हें यह बताना चाहिए कि क्या उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता के गांधीवादी प्रयत्नों को साथ दिया? मूझे तो महसूस होता है कि भारत विभाजन में इस्लामिक कट्टरवाद के साथ–साथ गोडसे जैसी कट्टरवादी सोच का भी कम योगदान नही हैं किसी ईमानदार प्रयत्न का विरोध करते–करते उसे असफल करना और असफलता का श्रेय प्रयत्न करने वालों पर डालना हिन्दू परम्परा नही रही है। गांधी जी ने भारत की स्वतंत्रता के लिए धार्मिक जातीय मामलों में जो भी रियायतें दी वे परिस्थिति जन्य आवश्यकता थी। उसके लिए गांधी गलत नहीं थे। इक्कीस तर्क पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि अब तक मैं गोडसे के जिस बयान को बहुत महत्वपूर्ण समझने की भूल कर रहा हूँ उसमें तो एक भी कोई महत्वपूर्ण तर्क है ही नहीं। इस बयान के अनुसार गांधी हत्या की बात तो बहुत दूर है, गांधी को गलत भी नही ठहराया जा सकता। मुझे तो तरस आता है उन गांधी भक्तों पर जिन्होंने गोडसे के बयान को उसी समय सार्वजनिक नहीं होने दिया। यदि यह बयान उसी समय गुप्त न रहकर सार्वजनिक हो गया होता तो इसकी हवा ही निकल जाती। मै आज भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पक्षधर हूँ। गोडसे के बयान को रोकना पूरी तरह गलत परम्परा का उदाहरण है। खासकर ऐसे बयान को रोकना जिसमें कोई तथ्य है ही नहीं।

यह यथार्थ है कि गोडसे ने गांधी की हत्या की। जिस साम्प्रदायिक विचारधारा ने गोडसे को प्रेरित किया, गोडसे उस विचारधारा का शिकार हुआ। गोडसे के मन में निस्वार्थ देशभक्ति की भावना भरी हुई थी। गोडसे की भावना पर कभी कोई उंगली नही उठाई जा सकती। गांधी हत्या के बाद जिस राजनैतिक विचारधारा ने भारत की राजनैतिक व्यवस्था अपने हाथ में की उन सबकी अपेक्षा गोडसे के मन में देशभक्ति की भावना अधिक थी और राजनैतिक स्वार्थ की शून्य। किन्तु राष्ट्रभक्ति की भावना से ओतप्रोत नवयुवक''गोडसे'' ने जो किया उस कृत्य से देश की हत्या हो गयी। उसका यह कार्य भले ही देशभक्ति की नीयत से किया गया किन्तु देश और समाज को अपूर्णनीय क्षति तो पहुंचा गया। पिता की नाक पर बैठी मक्खी को तलवार से उड़ाने की मूर्खता करके पिता की हत्या करने वाले मूर्ख या नासमक्ष को और क्या कहा जाए। गोडसे ने बहुत नुकसान किया। गांधी हत्या होते ही स्वार्थी राजनेताओं की बाधा दूर होगी। ये राजनैतिक बिरादरी के लोग गांधी जी को कभी पसंद नहीं करते थे। किन्तु इनकी मजबूरी थी। गोडसे की मूर्खता ने इनकी बाधा दूर कर दी। इन सबने गांधी जी के ग्राम स्वराज्य की परिभाषा बदल दी। इन सबने सत्ता को अपने स्वयं के लिए तथा अपने आने वाली पीढ़ियों के लिए रिजर्व करने का खेल शुरू किया। आज तक भारत उस खेल से मुक्त नहीं हो सका। इन नेताओं को भारत की सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था में अपने स्वार्थ पूर्ति का अवसर दिया गोडसे की एक भूल ने। यदि गोडसे और बाद के राजनेताओं के कार्यों की समीक्षा करें तो हम पायेंगे कि बाद के लोगों ने भी जो किया वह गोडसे के कार्य से कम गांधी विरोधी नहीं है भले ही भिन्न प्रकृति का है। किसी मूर्ख की मूर्खता का लाभ चालाक लोग उठा लें तो समीक्षक को समीक्षा करने मे जो कठिनाई होती है वही कठिनाई मेरे समक्ष भी है। गांधी जी के बाद राजनीति से ग्राम स्वराज्य लोक स्वराज्य के प्रयोग को निकाल बाहर कर दिया गया। नासमझ गांधीवादियों को समाज निर्माण के काम में भेज दिया गया। भारत को गांधी हत्या के कारण जो क्षति उठानी पड़ी वह अब भी यथावत जारी है। अब भी गांधी विचारों को दूर करके राजनैतिक स्वार्थ की विरासत समाज व्यवस्था पर मजबूत पकड बनाए हुए हैं। यदि आज गोडसे जीवित होता तो अपने किये के पश्चाताप से पागल हो जाता। गोडसे ने जो तर्क गांधी हत्या के पक्ष में उस समय दिये आज उनके बिल्कुल विपरीत तर्क देता क्योंकि गोडसे से भूल हुई जो उसे समझ में अवश्य ही आती।

मैं महसूस करता हूं कि यदि गोडसे के समान निस्वार्थ युवक साम्प्रदायिक दिशा में न जाकर गांधी के सम्पर्क में आया होता तो इस देश की सभी समस्याओं का समाधान हो जाता। फिर देश गांधी हत्या के कलंक से बच जाता। फिर देश की राजनीति पर सत्तालोलुप नेताओं का कब्जा नहीं होता। फिर गांधीवादी ग्राम स्वराज्य, लोकस्वराज्य की दिशा से भ्रमित नहीं होते। और भी बहुत कुछ संभव था जो नहीं हो सका। अब भी समय है कि हम नई पीढ़ी के देशभक्तों को गुमराह होने से बचा लें अन्यथा फिर से ये देशभक्त गुमराह होकर कोई भूल कर बैठे तो फांसी उस भूल के दुष्परिणामों से बचाने का समाधान न आज तक हुई है न होगी।

(ग) कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न (1) आपने लिखा कि भारत में आर्थिक असमानता बहुत बढ़ रही है। विकास दर अभी एक से सत्रह के बीच औसत नौ प्रतिशत है। इसे बढ़कर चार से चौदह के बीच औसत नौ होना चाहिए। मान लीजिए ऐसा हो जावे तो क्या आर्थिक असमानता कम होने लग जायेगी ?

उत्तर– मैं अपने सुक्षाव को आदर्श नहीं मानता बल्कि मजबूरी मानता हूं। आर्थिक असमानता यदि कम करना हो तो विकास दर को चौदह और चार के बीच औसत नौ पर लाना होगा जिसका अर्थ है निचले लोगों का अधिक विकास और ऊपर वाले का कम। किन्तु मेरा जो सुझाव है वह आर्थिक असमानता को कम न करके उसकी वृद्धि की गति को कम करेगा। यदि हमारी अर्थव्यवस्था चार और चौदह पर आ जावे तब भी हम उसे आठ और दस की ओर बढ़ाने की ओर तब तक मांग करेंगे। जब तक वह उलटी दिशा में न बढ़ने लगे।

मैंने एक कवि का गीत सुना था ''मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे मोती। मेरे देश की धरती'' यह गीत बहुत उत्साह पैदा किया करता था। मनमोहन जी के कार्यकाल में यह सपना साकार हो रहा है। भारत की धरती सोना भी उगल रही है और हीरे मोती भी किन्तु उसने अनाज उगलना कम कर दिया है। अब समस्या हीरे मोती के अभाव की नहीं है, समस्या है पाचन शक्ति के अभाव की। सम्पन्न लोग तो सोना भी पचा ले रहे हैं और हीरे मोती भी। किन्तु वे श्रमजीवी गरीब क्या करे जो सिर्फ गेहूं चावल ही पचा सकते हैं। धरती से हीरे मोती पैदा करना बुरा नही है किन्तु गरीब वर्ग की पाचन शक्ति भी बढ़ाना उतना ही जरूरी है जितना हीरे मोती पैदा करना हम श्रमजीवियों के श्रम का मूल्य न बढ़ने दे और उनके उत्पादन को हीरे मोती में बदल दें यह अन्याय होगा। अब उक्त कवि का वह गाना मेरे मन में उत्साह नहीं बढ़ा पाता। क्योंकि उत्साह जनक यह नहीं है कि दुनिया में सर्वाधिक अमीर व्यक्ति भारतीय ही हैं बल्कि उत्साह जनक यह है कि भारत में अमीरी के साथ–साथ गरीबी भी अधिक तेजी से घट रही है।

प्रश्न (2) आपके लेखों में कई जगह लोकतांत्रिक शासन पद्धति और लोकतांत्रिक जीवन पद्धति का उल्लेख हुआ किन्तु कहीं भी दोनों का अन्तर स्पष्ट नहीं हुआ। पश्चिम के लोकतंत्र में जीवन पद्धति विकसित हुई जो भारत में शासन पद्धति से आगे नहीं बढ़ सकी यह बात अधिक साफ होनी आवश्यक है। जब तक दोनों का अन्तर साफ न हो तब तक पढ़ने वाले को कठिनाई होती है। क्योंकि किसी अन्य पुस्तक में तो यह अन्तर मिलता नहीं और अपने कभी स्पष्ट नहीं किया।

उत्तर– यह बात बिल्कुल सच है कि किसी अन्य पुस्तक में लोकतांत्रिक शासन पद्धति और लोकतांत्रिक जीवन पद्धति का फर्क स्पष्ट नहीं किया गया। साम्यवादी देशों में लोकतंत्र न होकर Dictatorship of the Prolitariot सर्वहारा वर्ग की तानाशाही मानी जाती है। वहाँ Prolitariot का अर्थ पोलित ब्यूरो ही माना गया हैं इसलिए साम्यवाद में लोकतंत्र पर कोई चर्चा नहीं हुआ करती। वे तानाशाही के ही संशोधित संस्करण को लोकतंत्र कह दिया करते हैं। पश्चिम के देशों में लोकतांत्रिक जीवन पद्धति और शासन पद्धति में कोई फर्क नहीं है क्योंकि वहां दोनों जगह लोकतंत्र आया। किन्तु जिन देशों में लोकतंत्र थोपा गया या आयात हुआ। वहां सिर्फ शासन पद्धति में ही लोकतंत्र आया, जीवन पद्धति में नहीं ऐसे देशों में भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, अफगानिस्तान, इराक, श्रीलंका, नेपाल आदि देश शामिल है। इन दोनों पद्धतियों के बीच स्पष्ट फर्क होता।

(1) लोकतांत्रिक जीवन पद्धति में लोक नियंत्रित तंत्र होता है। लो.शा. पद्धति में लोकनियुक्त तंत्र होता है, नियंत्रित नहीं।

(2) लो. जीवन पद्धति में संसद या राज्य की भूमिका मैनेजर की होती है। लो. शासन पद्धति में संसद या राज्य की भूमिका संरक्षक अभिरक्षक Custodian की होती।

(3) लो. जीवन पद्धति में संविधान राज्य और समाज के बीच द्विपक्षीय समझौता है। संसद राज्य का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु लो. शा. पद्धति में संसद राज्य का भी प्रतिनिधित्व करती है और समाज का भी। इसलिए संविधान संशोधन में समाज की कोई भूमिका नहीं होती। भारत में संविधान संशोधन का अन्तिम अधिकार संसद के पास है। लोकतांत्रिक समाज व्यवस्था वाले देशों मे संविधान संशोधन के लिए संसद के अतिरिक्त भी अंकुश है। अभी–अभी एक सप्ताह पूर्व बेनेज्वेला की जनता ने आम मतदान द्वारा संविधान संशोधन के प्रस्ताव को उन्चास के विरूद्ध इक्यावन प्रतिशत से अस्वीकार किया है। दुनिया के अन्य देशों में भी ऐसी व्यवस्था है जहां संविधान संशोधन में समाज की प्रत्यक्ष भूमिका हो। (1) आस्ट्रेलिया, डेनमार्क, फ्रान्स आदि अनेक

देशों में संसद के दोनों सदनों में पारित संविधान संशोधनों पर जनमत संग्रह आवश्यक है। बेल्जियम, स्वीडन, नार्वे, कोलंबिया, फ्रान्स आदि देशों में यदि संविधान संशोधन का प्रस्ताव संसद पारित करती है तो संसद भंग करके तत्काल नये चुनाव होते हैं और नयी संसद पुनः पारित करेगी तब संविधान संशोधन होगा। इटली आदि देशों में भी कुछ इसी तरह की परम्परा है। अमेरिका में संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित संविधान संशोधन प्रदेशों से पारित कराना अनिवार्य है। उसमें से भी अमेरिका आदि कई देशों के संविधान कुछ धाराओं के संशोधन को तो बिल्कुल ही रोक देते है। अभी–अभी तीन दिसम्बर को संसद में हो रही बहस में मैने अधिकांश सांसदों के मुंह से कहते हुए सुना कि भारत का संविधान दुनिया का सबसें अच्छा संविधान है। उन्हें यह भी कहना चाहिए था कि ''क्योंकि इस संविधान संशोधन के अधिकारों में से समाज को बिल्कुल बाहर कर दिया गया है।''
लो. जीवन पद्धति में समाज की दैनिक जीवन पद्धति में शासन का हस्तक्षेप न्यूनतम होता है और लो. शासन पद्धति में अधिकतम। लो. जीवन पद्धति का यह नियम है कि वहां कुल मिलाकर हस्तक्षेप दो प्रतिशत **दो प्रतिशत** से अधिक हो ही नहीं सकता। किसी भी पश्चिम के देश में यदि आप पूछें कि आपके शहर में अपराधियों का प्रतिशत क्या है तो उत्तर मिलेगा एक प्रतिशत से भी कम। भारत में विपरीत उत्तर मिलेगा। ''निन्यानवे प्रतिशत से भी अधिक''। यह उत्तर ही शासन पद्धति या जीवन पद्धति का लिटमस टेस्ट माना जाएगा।
लो. शासन पद्धति को जीवन पद्धति में बदलनें हेतु हमें क्या करना होगा यह भिन्न विषय है। इस पर पृथक से चर्चा हो सकती है।

प्रश्न (2) आप शिक्षा के बिल्कुल विरूद्ध हैं। आप भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में अकेले ऐसे आदमी हैं जो शिक्षा को विकास विरोधी मानकर उस पर किये जाने खर्च को गलत मानते हैं। ऐसा क्यों ? भारत का हर आदमी मानता है कि शिक्षा का विकास के साथ गहरा सम्बन्ध हैं। किन्तु आप इसके विपरीत कुछ न कुछ लिखते रहते हैं।
उत्तर– मैंने आज तक शिक्षा का कहीं विरोध नहीं किया। शिक्षा की विकास में बहुत भूमिका होती है। इससे व्यक्ति परिवार और देश के विकास में मदद मिलती है। मेरे परिवार के लड़के या लड़कियां उच्च शिक्षा प्राप्त हैं और वर्तमान में भी प्राप्त कर रहे हैं। मैं स्वयं भी अपने मित्रों को प्रगति के लिए अधिक पढ़ने की सलाह देता हूँ।
लगता है कि शिक्षा सम्बन्धी मेरी धारणा को समझने में भूल हुई है। मेरा अनुभव यह है कि मेरे परिवार की उच्च शिक्षा का कोई लाभ मेरे पड़ोसी मजदूर परिवार को नहीं हुआ। यदि मेरे परिवार को शिक्षा दिलाने में पड़ोसी मजदूर को भी टैक्स देना पड़ा हो तो इसे न्याय संगत कैसे कहां जाए? उचित तो यह होता है कि शिक्षा पर होने वाला सारा खर्च सम्पन्न या शिक्षित वर्ग उठाता या यदि ऐसा न भी हो तो सभी अपना अपना खर्च वहन करते। किन्तु शिक्षा पर खर्च तो बढ़ता और श्रम उत्पादन श्रम उपयोग की वस्तुओं पर कर लगाकर उसकी भरपाई सब लोगों से हो यह उचित नहीं। शिक्षा का लाभ शिक्षा प्राप्त परिवार उठाये और टैक्स आम जनता दे या शोषण और अन्याय है। टैक्स शिक्षित लोग दें और लाभ सब उठावें यह न्याय संगत है। यही मेरा सुझाव है।
शिक्षा से विकास बढ़ता है। शिक्षा से क्षमता भी बढ़ती है। ज्यों–ज्यों शिक्षा बढ़ रही है त्यों–त्यों शोषण की क्षमता भी बढ़ रही है यह चिन्ता का विषय है। कई विद्वानों ने प्रश्न उठाया है कि सारी दुनिया के विश्वविद्यालयों के स्तर में भारत का स्थान बहुत नीचे होने से उन्हे शर्म महसूस हुई। शिक्षा के कमजोर स्तर से तो उन्हें शर्म महसूस होती है किन्तु गरीबी रेखा के नीचे इक्कीस करोड़ के जीवन यापन की मजबूरी से इन्हें शर्म नहीं महसूस हुई। साठ रूपये प्रतिदिन श्रम मूल्य घोषित करने मे भी शासन की विफलता तो इन्हें कोई शर्म महसूस नहीं होती। मैंने ऐसे लेखकों के विषय में पता किया तो मालूम हुआ कि सभी उच्च शिक्षा का लाभ प्राप्त कर चुके लोग हैं और सभी अपने बच्चों को न शारीरिक श्रम की कोई चिन्ता है न सम्बन्ध। श्रम की अनदेखी करके शिक्षा के लिए हो हल्ला करने वाले विकास समर्थकों के विषय में यदि कोई न सोचे तो क्या मैं भी चुप रहूँ।
शरद यादव जी एक सम्मानित नेता हैं। मैं उनका बहुत सम्मान करता हूँ। उन्होंने किसी अर्थशास्त्री का हवाला देकर लिखा कि भारत में सत्तर करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे है। मैंने पता किया तो मालूम हुआ कि उन्होंने अपनी एक अलग से गरीबी रेखा बनाकर इक्कीस करोड़ की आबादी को सत्तर करोड़ घोषित कर दिया। यादव जी एक उच्चशिक्षित व्यक्तित्व है। उन्होंने एक तरफ तो गरीबों के पक्ष में आवाज उठा दी दूसरी ओर गरीबी रेखा से ऊपर की आबादी को

उन्चास प्रतिशत को इस लाभ में हिस्सेदार बनाने की इच्छा जोड़ दी। होना तो यह चाहिए था कि इक्कीस करोड़ लोगों को पहले गरीबी रेखा से निकालने के लिए बजट का प्रावधान होता और उसके बाद उन्चास करोड़ को शामिल करते किन्तु हुआ उल्टा इक्कीस करोड़ के लिए उपलब्ध नाममात्र बजट में ही उन्चास करोड़ और शामिल करना कितना उचित है मैं नहीं समझ सका। अब सोचिए कि मैं ऐसे–ऐसे उच्च शिक्षा विद्वानों की ऐसी–ऐसी षड्यंत्र पूर्ण मांगो का समर्थन कैसे करूँ। विकास के लाभ का अधिक हिस्सा शारीरिक श्रम को ऊपर उठाने पर लगना न्यायोचित है और ऐसा करने से शिक्षा के विकास में कुछ कटौती भी हो तो अल्पकाल के लिए उचित है किन्तु शिक्षा के विस्तार के लिए श्रम मूल्य पर विपरीत प्रभाव पड़े यह उचित नहीं। मेरी यह निश्चित धारणा है शिक्षा पर होने वाले व्यय को रोककर श्रम मूल्य वृद्धि के ठोस प्रयास किये जाते तो शिक्षा का स्तर स्वयंमेव सुधर जाता क्योंकि आर्थिक स्थिति में सुधार का शिखा पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पडता है किन्तु शिक्षा का सकारात्मक प्रभाव उस परिवार तक ही सीमित रहता है, अन्य श्रमजीवियों पर नहीं।

मैंने लिखा अैर श्रम की तुलना करते हुए शारीरिक श्रम को पहली आवश्यकता लिखा। जो भी पाठक मुझसे प्रश्न करते हैं वे सिर्फ शिक्षा की बात करते है श्रम की नहीं। मैं चाहता हूं कि प्रश्नकर्ता प्राथमिकता को समझते हुए प्रश्न करे। शिक्षा के विषय में मेरे विचार शिक्षा विरोधी बताने वाले मित्रों को में श्रम विरोधी या गरीब लिखूं तो यह उचित नही होगा। अच्छा हो कि आप अपने तर्क दें कि शिक्षा पर खर्च की जाने वाली सम्पूर्ण राशि की वसूली में अशिक्षितों गरीबों को बाहर कर दें और शिक्षा का बजट कितना भी बढ़ा दें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। मैंने शिक्षा के संबंध में जो भी विचार प्रकट किये है वह वर्तमान शिक्षा नीति के संबंध तक सीमित है। यदि शिक्षा संबंधी कोई नई नीति शिक्षा को श्रम उत्थान के साथ जोड़ सके तो मैं अपने विचारों पर पुनः विचार करके निष्कर्ष निकालूंगा।